ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

हिन्दी दलित साहित्य की आधुनिक पृष्ठभूमि स्वामी अछूतानन्द हरिहर एवं प्रतिरोध की विरासत`

डॉ0 यशवन्त वीरोदय,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

आधुनिक काल में पहली बार 'दलित साहित्यकार अपना वैचारिक धरातल सुनिश्चित करते हैं, और प्रतिरोध की धारा (Resistance) को बनाए रखते हुए, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में रचित राष्ट्रीय साहित्य के समानान्तर दलितों की मुकम्मिल आजादी के लिए अपने साहित्य (दलित साहित्य) को बढ़ावा देते हैं। इस संदर्भ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में रचित राष्ट्रीय साहित्य के समानान्तर स्वामी अछूतानन्द हरिहर, हीरा डोम, की कृतियो को देखा जा सकता है। इसके साथ गैर दलित साहित्यकारों में निराला, प्रेमचन्द, राहुल साँस्कृत्यायन, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि की कृतियों को देखा जा सकता है, जिसमें भारत की आजादी के साथ सामाजिक गुलामी से मुक्ति का स्वर प्रमुख है हिन्दी दलित साहित्य के आरम्भिक चरण के निर्माण में प्रतिरोध की इस परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान है।

आधुनिक काल में मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बनता है। मुनष्य की मूल अवधारणाओं में परिवर्तन का आधार मानसिकता पर निर्भर करता है, इसी मानसिकता को पुनर्जागरण या नवजागरण कह सकते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि एक माने में परिवर्तन का भय और परिवर्तन से पलायन भारत और उसके सायकी में तथा उसके उपचेतन तथा अवचेतन की गहराईयों में बसा हुआ है, या बसा दिया गया है जो निर्णायक क्षणों में साहस और निर्भिकता के प्रदर्शन से रोकता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की निम्न पक्तियाँ हमारे उस राष्ट्रीय सायकी को बड़े सहजभाव से व्यक्त करती हैं–

''परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं,

किन्तु मुझे तो सीधे–सच्चे पूर्व भाव ही भाते हैं।''

परिवर्तन का भय और परिवर्तन के प्रति आत्मरक्षात्मक प्रतिक्रिया की जड़ें हमारी राष्ट्रीय मानसिकता में बसी हुई है। यही कारण है कि डॉ0 भवदेव पाण्डेय को कहना पड़ा ''हिन्दी कविता की परम्परागत सवर्णवादी मान्यताओं (भारत–भारती) ने मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि बना दिया।''[1]

डॉ0 भवदेव पाण्डेय के अनुसार ''उन्होंने (मैथिलीशरण गुप्त) आर्य–संस्कृति की अपनी अनुचरता की प्रबल अभिव्यक्ति की 'भारत–भारती' में। लिखा, **'यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी आर्य हैं',** उन्होंने आर्य संहिताकारों में 'मनु' तथा उसके द्वारा प्रस्तुत वर्ण व्यवस्था को भी सादर नमन किया, मसलन – **मनु याज्ञवल्क्य समान सत्तम–विध–विधायक थे यहाँ'** जिस 'भारत–भारती' के लिए उन्होंने कामना की थी 'भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती' उसी में उन्होंने ब्राह्मण वर्ग के लिए लिखा–'भू पर तुम्हें सुर जानकर थे मानते मानव सभी'। गुप्त जी अपनी कविताओं में आर्यतर भारतीयों की गणना

करना पसन्द नहीं करते थे। यह दृष्टि उन्हें महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिली थी। इन्होंने क्षत्रियों की वीरता और वैश्यों के वाणिज्य धर्म को भी उद्‌बोधित किया, परन्तु शूद्रों दलितों के लिए लिखा– **'उत्पन्न हो तुम प्रभु–पदों से जो सभी को ध्येय है।'** यहाँ 'सभी' का प्रयोग केवल सवर्णों के लिए ही किया। यह था **'भारत–भारती'** के सन् 1912 का भविष्यत खंड, यानी वे देश के अनन्त भविष्यत् काल तक दलितों को 'प्रभु–वर्ग' की पद सेवा से मुक्त नहीं करना चाह रहे थे। देखा जा सकता है कि यह मनुवादी वर्ण व्यवस्था का पुनरुत्थानवादी काव्य दण्ड था जिसके प्रहार से वे नवजागरण की भावना को लहूलुहान कर रहे थे।''[2]

यहाँ भवदेव पाण्डेय ने जिस 'पुनरुत्थानवादी काव्यदण्ड के प्रहार से नवजागरण की भावना को लहूलुहान' करने की बात कर रहे हैं, उस पर विचार करना आवश्यक है। आज औपनिवेशिक युग के साँस्कृतिक रिनेसां पर पुनर्विचार करने वाले अनेक बुद्विजीवियों का मत है कि यह रिनेसां सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता की रचना करने में सहायक नहीं था। शायद यही कारण है कि गुप्त जी के परम्परागत वर्ण व्यवस्थावादी दृष्टिकोण से युक्त साहित्य के समानान्तर परिवर्तनवादी 'दलित साहित्य', परिवर्तन की मानसिकता तैयार करने में अधिक सफल है, और वह अपनी प्रतिरोध की धारा बनाते हुए आगे बढ़ रहा है।

प्रसिद्ध जनवादी चिंतक 'पूरनचन्द्र जोशी' के नवजागरण विषयक विचार इस बात को रेखांकित करते हैं कि हमारा रिनेसां परिवर्तन विमुख रहा है और 'उत्पीड़ित बहुजन को उसमें भागीदार बनाने का प्रयास नहीं हुआ है।' बकौल पूरनचंद्र जोशी ''मुझे लगता है कि अभी तक हमारे रिनेसां के मुख्य चरित्र और दिशा का निर्धारण ऊपर के विशिष्ट वर्ग के भीतर के तत्वों के द्वन्द्व और अन्तर्विरोध द्वारा ही होता रहा है और उपेक्षित, उत्पीड़ित बहुजन को उसमें भागीदार बनाने के गंभीर प्रयास नहीं हुए हैं। हमारा रिनेसां परिवर्तन विमुख रहा, परिवर्तन प्रेरक नहीं। इसका मूल कारण था कि सामाजिक यथास्थिति के शिकार उत्पीड़ित समुदाय को, उनके अन्याय से मुक्ति के आग्रहों को और उनकी अपनी अत्यन्त समृद्ध और जीवंत लोक संस्कृतियों को अभिजातीय रिनेसां के दायरे से बाहर रखा गया।''[3]

पूरनचन्द जोशी जी की यह बात गौर करने वाली है कि सामाजिक यथास्थिति के शिकार उत्पीड़ित समुदाय को जबरन अभिजातीय रिनेसां के दायरे से बाहर रखा गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई जागृति की लहर उस समय पुरानी व्यवस्था को चुनौती देने का काम कर रही थी? निश्चय ही अभिजातीय रिनेसां से वंचित तपके के लिए सबसे व्यवस्थित आन्दोलन की सूचना महाराष्ट्र से मिलती है जो महात्मा ज्योतिबाफूले (1827–1890) के नेतृत्व में चल रहा था। फूले भारत के पहले 'सिस्टम–बिल्डर' थे, जिन्होंने शोषण मुक्त समाज की एक ठेठ भारतीय विचारधारा विकसित की। वेदों या उपनिषदों की ओर लौटने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। जबकि अभिजाती रिनेसां के अगुवा लोग वेदों की ओर लौटने की सलाह दे रहे थे। फुले ने 1873 में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की और आजीवन शोषित वर्ग के हितों के लिए लड़ते रहे। डॉ0 अम्बेडकर ने उनके इस काम को आगे बढ़ाया। इन्हीं दोनों विचारकों 'फुले एवं अम्बेडकर' ने आधुनिक दलित साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार की जिस पर समकालीन दलित साहित्य खड़ा है। आधुनिक युग का 'दलित साहित्य' मात्र साहित्यिक आन्दोलन नहीं है वह सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन भी है जो पुराने रिनेसां और 'जन उत्पीड़ित बहुजन के भेद को पाटने और सचमुच परिवर्तन प्रेरक रिनेसां में प्रस्फुटित होने की संभावना प्रस्तुत करता है।

अभी तक तो हमने यह स्पष्ट किया कि आधुनिक युग के नवजागरण तथा राष्ट्रीय सायकी और उससे उत्पन्न राष्ट्रीय साहित्य का स्वरूप और चरित्र क्या है? और अब हम आगे देखने का प्रयास करेगें कि इस राष्ट्रीय साहित्य के समानान्तर विकसित आधुनिक युगीन हिन्दी दलित साहित्य का आरम्भ और विकास कैसे होता है, और इसका मूल स्वर क्या है?

उत्तर भारत में किसी भी दलित बौद्धिक को प्रिंट संस्कृति में प्रथम प्रवेश 1914 में प्रकाशित 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत कि शिकायत' से होती है। 1977 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में डॉ0 राम विलाश शर्मा ने इस कविता को उद्धृत किया है। ''मैनेजर पाण्डेय इसे दलित चेतना की पहली कविता मानते हैं।''[4] हीराडोम के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। चमनलाल ने अपने एक लेख में उन्हें वाराणसी का बताया है।[5]

अब तक की धारणा यह रही है कि हिन्दी में आधुनिक दलित साहित्य का आरम्भ 1914 में प्रकाशित 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से ही मानी जानी चाहिए। इसके पीछे मैनेजर पाण्डेय जैसे साहित्यकारों का तर्क यह है कि 'स्वामी अछूतानंद हरिहर (1879–1933 ई0) का रचना काल 'हीरा डोम' से पहले ही शुरू हो जाता है लेकिन कोई रचना प्रकाशित न होने के कारण वे हीरा डोम के बाद के दलित साहित्यकार ठहरते हैं। बकौल मैनेजर पाण्डेय ''आज के जमाने में रचना का लिखा जाना काफी नहीं है, साहित्य बनने के लिए रचना का पाठक के पास पहुँचना भी जरूरी है, पाठक के पास पहुँचने के लिए उसे प्रिंट संस्कृति से गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया तक जिन लेखकों की पहुँच नहीं होती उनका लेखन भविष्य की निधि भले ही हो लेकिन वह वर्तमान में साहित्य नहीं हो पाता।''[6] यहाँ यह प्रश्न उठना वाजिब है, क्या किसी रचना को केवल इस तर्क के आधार पर बाद का ठहराया जा सकता है कि–'यह रचना/कृति/रचनाकार प्रकाशित नहीं है' तो फिर हम 'संत साहित्य' के बारे में क्या धारणा बनायेंगे? मध्यकाल का संत साहित्य या यूँ कहें कि समूचा 'भक्ति साहित्य' केवल पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित रहा और बहुत बाद में 'प्रिंटींग मशीन' के आविष्कार के बाद प्रकाशित हुआ, तो क्या बाद में प्रकाशित होने के कारण संत साहित्य या भक्ति साहित्य बहुत बाद ठहरता है? आखिर प्रकाशन काल का रचनाकाल से क्या मतलब? सही बात यह है कि जिस प्रकार संत कवियों का रचनाकाल रचना के बाद में प्रकाशित होने के बाद भी आधुनिक काल से पहले का है और वे पहले के कवि हैं, ठीक उसी प्रकार स्वामी अछूतानन्द का रचनाकाल 'हीरा डोम' के पहले का है, और वे आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य के प्रथम कवि हैं। इस आधार पर 'हीरा डोम' स्वामी अछूतानन्द के बाद के कवि ठहरते हैं, और उनकी रचना 'अछूत की शिकायत' स्वामी अछूतानन्द की रचना के बाद की रचना ठहरती है।

'अछूत की शिकायत' नामक यह कविता भोजपुरी बोली में रचित गेयात्मक कविता है, इसमें दलित हृदय की वास्तविक पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। हीराडोम और स्वामी अछूतानन्द की कविताएँ इस बात की गवाही देती हैं कि निर्गुण संत आन्दोलन और वर्तमान दलित साहित्य के बीच जो चार–पाँच सौ वर्षों का अन्तराल है उसमें यह वर्ग पूरी तरह निष्क्रिय नहीं था। वे मौखिक परम्परा में ही सही अपनी सर्जनाओं को जारी रखे हुए थे। उनमें से ढेर सारी लुप्त हों गयी लेकिन अब भी लोकगीतों तथा जातीय गाथाओं के रूप में सुरक्षित हैं।

'अछूत की शिकायत' नामक इस कविता में एक ओर गहरी करुणा और विषाद है दूसरी ओर इतना ही गहरा व्यंग्य विधान है, यह करुणा, विषाद एवं व्यवस्था के प्रति व्यंग्य पूरी कविता में

आदि से लेकर अंत तक छाया हुआ है जिसे बड़ी कुशलता के साथ 'हीराडोम' जी ने काव्यात्मक शब्द बन्ध (Poetic Diction) में प्रस्तुत किया है। जो लोग हिन्दी दलित कविता पर अनगढ़ होने का आरोप लगाते हैं उन्हें दलित चेतना की इस आरंभिक कविता को देखना चाहिए जो गेयात्मक एवं संवेदनात्मक है। अपने पाठ और अर्थ को लेकर यह कविता कहीं कोई ऐसी दुविधा नहीं खड़ा करती कि जहाँ विद्वानों को बहस करने की जगह मिल सके।

कविता की पहली पंक्ति में ही बड़ी विडम्बना छुपी हुई है–

''हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी
हमनी के सहेबे से विनती सुनाइबि
हमनी के दुख भगवनओ न देखता जे
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि''

हीरा डोम की इन पंक्तियों में दो बातें यथार्थ होती हैं–

(1) दलित समाज 'रात–दिन' दुःख से पीड़ित है अर्थात किसी व्यक्ति के जीवन में दुख या विडम्बना हमेशा नहीं रहती लेकिन दलित आजीवन दुख और विडम्बना ही झेलता है।

(2) समाज के प्रभुवर्ग या सरकारी अमला वर्ग से विनती (Appeal) करती हुई यह कविता यह स्पष्ट कर देती है कि इस अपील की कहीं कोई सुनवाई नहीं है। ईश्वर भी इस क्लेष और पीड़ा को नहीं हर सकता।

इस कविता के आदि और अन्त के बीच हीरा डोम के जीवन के अनेक खण्ड दृश्य अन्तर्कथाएँ (Anecdotes) जुड़े हुए हैं। मसलन, 'हीरा डोम' पादरी की कचहरी में जाकर, धर्म परिवर्तन करके 'रंगरेज' बन जाने के रूप में अपने आक्रोश को व्यक्त करता है लेकिन उसके बाद तुरन्त ही टिप्पड़ी करता है कि–इसके बाद वह अपना मुँह कैसे दिखाएगा? यह तो एक खण्ड दृश्य हुआ अब दूसरा खण्ड दृश्य देखिए, जिसमें कवि ने बताया है कि इस समाज में श्रेष्ठ कौन है? जो भीख माँगता है, जो लाठी–भाला चलाता है, जो डाण्डी मारता है, कविता बनाता है, (भाट) कोर्ट कचहरी में दलाली करता है, लेकिन अपने खून–पसीने की कमाई करने वालों को वह हेय दृष्टि से देखता है–

''बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,
ठकुरे के लेखे नहिं लउरी चलाइबि।
सहुआ के लेखे नहिं डांडी हम मारबजां
अहिरा के लेखे नहिं गइया चराइबि
भंटऊ के लेखे न कवित्त हम जोरबजां,
पगड़ी न बाँधि के कचहरी में जाइबि।
अपने पसिनवा कै पइसा कमाईबजाँ,
घर भर मिलि जुलि बांटि–चोंटि खाइबि।''[7]

आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य की यह आरम्भिक कविता, प्रत्यक्ष रूप से श्रम को प्रतिष्ठित करने वाली, कविता है। इस कविता का एक और 'खण्ड दृश्य' अत्यंत महत्वपूर्ण है जो ईश्वर को एक 'वर्गीय धारणा' मानकर उसके सामन्ती वैभव को नष्ट करती है और अवतारवाद का खण्डन करती है–

''खंभवा के फारि पहलाद के बचवले जां
ग्राह के मुंह से गजराज के बंचवले।
धोती जुरयोधना के भइआ छोरत रहै,
परगट होके तहां कपड़ा बढ़वले।
कहवाँ सुतल बाटे सुनत न बाटे अब
डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।''[8]

इस कविता में 'ईश्वर' के प्रति आदर का भाव नहीं है। कवि ने 'कहवाँ सुलत बाटे' शब्द का

प्रयोग किया है जो, भोजपुरी में निरादर की दृष्टि से देखा जाता है यदि इन शब्दों के स्थान पर **'कहवाँ सुतल बानी'** का प्रयोग होता तो यह आदर सूचक माना जाता लेकिन कवि ने 'सुतल बाटे' शब्द का प्रयोग कर ईश्वर की भव्यता को तोड़ा है और 'ईश्वर डोम को छूने से डरता है' यह कहकर कवि ने दीनबन्धु की उसी छवि को भी तोड़ दिया है। बकौल मदन कश्यप ''यह हीरा डोम ही हैं जो ईश्वर को डरपोंक कहते हैं और प्रकारान्तर से उसे वर्गीय हितों का रक्षक मानते हैं।''[9]

'हीरा डोम' के अपने जीवन के ये खण्ड–दृश्य और अन्तर्कथाएँ गहरी विडम्बनाओं से संपृक्त हैं यदि दलित कवि हीरा डोम का जीवन इतना विडम्बनापूर्ण न होता तो सम्भव है इस कविता का स्वर भी कुछ दूसरा ही होता। यह 'स्थिति–विपर्यय' ही सम्पूर्ण प्रसंग को अत्यन्त गंभीर और करुण बना देती है। जिससे एक मायने में त्रासदी की सृष्टि होती होती है।

यह आधुनिक दलित कवि हीराडोम के जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं, विडम्बनाओं का 'शोकगीत' है जिसमें करुणा एवं व्यंग्य के माध्यम से कवि ने अपने जीवन को व्यक्त करने का प्रयास किया है। अपने जीवन के किसी विशेष मोड़ पर किसी साथी के बिछुड़ जाने या संतान के मर जाने पर 'शोकगीत' तो लिखे गए लेकिन पूरे जीवन तथा पूरे समाज पर लिखा जाने वाला यह अपने तरह का विशिष्ट 'शोकगीत' है। ''हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'निराला' ने 9 अक्टूबर 1934 को अपनी पुत्री के मरने पर एक शोकगीत लिखा–'सरोज स्मृति', लेकिन जिस व्यक्ति और समाज का पूरा जीवन ही विडम्बना का शिकार हो, जिसमें एक व्यक्ति अपने पूरे समाज के साथ त्रासदी झेलता हो ऐसे विषय पर 'शोकगीत' नहीं लिखे गए हैं। आधुनिक काल में आकर हिन्दी साहित्य का आरंभिक दलित कवि इस विषय पर अपना चलाता है और यह कविता हिन्दी साहित्य का प्रथम सामाजिक 'शोकगीत' बन जाती है।

'अछूत की शिकायत' पाठकों को गहरे आधार पर संवेदनात्मक' बना देती है। संवेदना गहरे अर्थ में भोगे हुए यथार्थ से संबद्ध होती है। फलस्वरूप पाठक आत्मान्वेषण की प्रक्रिया से जुड़ जाता है, उसे लगता है कि मानो युग की सम्पूर्ण विषमताएं, विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ इस कविता में पूंजीभूत हो गयी हैं। एक तरह से यह हीरा डोम की अपनी त्रासदी भी है और युग की त्रासदी भी। त्रासदी का माने यहाँ अरस्तू द्वारा निर्धारित परिभाषा से नहीं है बल्कि त्रासदीय अन्तर्दृष्टि (Tragic vision) से है।

उपर्युक्त विवेचन से इस कविता के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलकर सामने आ रहे हैं–

1) 'हीरा डोम' आधुनिक हिन्दी के प्रारम्भिक दलित कवियों में से हैं।
2) यह भोजपूरी में रचित गेयात्मक कविता है।
3) आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य में श्रम को प्रतिष्ठित करने वाली कविता है।
4) आधुनिक हिन्दी साहित्य की यह ऐसी कविता है जो ईश्वर को वर्गीय अवधारणा मानती है और उसके सामन्तीय वैभव और अवतारवाद का खण्डन करती है।
5) आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य का एक 'शोकगीत' है।

आधुनिक काल में जहाँ डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण भारत में दलित आन्दोलन की लहर फूँकते हैं, वहीं भारत के विभिन्न प्रदेशों में भी कई विचारकों ने दलितों में जागृति पैदा करने की भरपूर कोशिश की है। बीसवीं सदी के आरम्भ में उत्तर भारत में दलित जागरण की जो सुगबुगाहट शुरू हुई उसे स्वामी अछूतानन्द हरिहर की देन माना

जा सकता है। वे वास्तव में उत्तर भारत में दलित मुक्ति के पुनर्जागरण पुरुष थे।

स्वामी अछूतानन्द का जन्म 6 मई 1879 ई0 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के सौरिस गाँव में हुआ था। ये दलित वर्ग में उत्पन्न हुए थे। इनका बचपन का नाम हीरा लाल था। इनके पिता अंग्रेज सेना में कार्यरत थे, जिसके कारण उन्हें पढ़ने की सुविधा मिल सकी। 14 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी, तथा बंग्ला भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया तथा आर्य–समाजियों के साथ रहते हुए उन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी आदि भाषाएँ भी सीख लीं। इनका विवाह इटावा की रहने वाली 'दुर्गावती' से हुआ जिससे तीन पुत्रियाँ हुईं। 20 जुलाई 1933 को 54 वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान 'वैनाझावर ईदगाह कानपुर' में हो गया।

स्वामी अछूतानन्द पहले आर्यसमाजी थे, स्वामी सच्चिदानन्द ने इन्हें अपना शिष्य बनाया था। 1905 में ये अजमेर में आर्यसमाज में दीक्षित हुए व इनका नाम हरिहरानन्द पड़ा। आर्य समाज के माध्यम से दलित मुक्ति का रास्ता न खुलते देखकर 1912 में आर्यसमाज छोड़ दिया और दिल्ली जाकर 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की तथा 1912 से 1917 तक स्वामी अछूतानन्द हरिहर बनकर आर्यसमाज की पोल खोली। 1921 में अछूतानन्द हरिहर ने आर्यसमाजी पं0 अखिलानन्द को दिल्ली में शास्त्रार्थ में पराजित किया।

1922 में उन्होंने विराट अछूत जाटव सम्मेलन का आयोजन किया और अपने समाज के लिए 'आदि हिन्दू' शब्द की घोषणा की। 1925 में उन्होंने हिन्दी मासिक 'आदि हिन्दू' का कानपुर से प्रकाशन करना शुरू किया तथा दिल्ली, पंजाब, हरियाणा आदि अनेक प्रांतों में 'आदि हिन्दू' सम्मेलन का आयोजन किया।

1932 में अछूतानन्द हरिहर ने 'आदि हिन्दू सभा' का नाम बदलकर 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' कर दिया। 1930–32 ई0 में जो 'गोल मेज सम्मेलन' हुआ उसमें स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने सैकड़ों टेलीग्राम इस पक्ष में लंदन भिजवाए कि 'अछूतों के प्रतिनिधि गाँधी जी नहीं डॉ0 अम्बेडकर हैं।'

स्वामी जी साहित्य सत्ता (मीडिया, कला, नाटक) को मुक्ति का आधार मानते थे। चमन लाल के अनुसार ''इनकी जो रचनाएँ इनके जीवन काल में प्रकाशित हुँई उनमें शम्बूक मुनि (नाटक) रामराज्य न्याय (नाटक) मायानन्द बलिदान, परखपाद, बलिछलन (अपूर्ण) शामिल है। उनकी अन्य रचनाओं में 'हरिहर भजनमाला' विज्ञान भजनमाला व 'आदि हिन्दू भजनमाला' भी हैं लेकिन ये रचनाएँ अब उपलब्ध नहीं हैं।[11] इलाहाबाद के रहने वाले एडवोकेट गुरु प्रसाद 'मदन' ने अपने पास अछूतानन्द साहित्य की पाण्डुलिपि होने की बात कही है लेकिन अभी तक यह साहित्य प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही है।

स्वामी अछूतानन्द जी की प्रसिद्ध कृति 'आदिवंश का डंका' है जो आज उपलब्ध है, इसमें गीत, गज़ल, भजन, रसिया, कजरी, आदि शामिल है। 'आदिवंश का डंका' 'लोक छन्द' में रचित कृति है, 'चमनलाल जी के अनुसार 1983 तक उसके ग्यारह (11) संस्करण छप छुके हैं''[12] इस लघु संग्रह में 21 कविताएँ संकलित हैं। 1910 से 1927 के बीच लिखी गयी स्वामी अछूतानन्द की कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं जो उनको हिन्दी दलित साहित्यकार सिद्ध करती हैं–

गज़ल–पुरखे हमारे थे बादशाह, वेद में भेद छिपा था, हम भी कभी थे अफजल

कव्वाली–'निशदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।

कविता–'आदिवंश का डंका', 'सवर्णों को चेतावनी'

ख्याल–ये आदि हिन्दू, अछूत, पीड़ित दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे?

कजरी–'हक बंटवइयों कि ना?

गीत–जागोजी जागो (थिएटर–ध्वनि)

स्वामी अछूतानंद अपना इतिहास बोध प्राप्त कर के साहित्य के माध्यम से उसे दलित समाज को संप्रेषित करते हैं ताकि उनमें भी जागरण आए। वे सोए हुए दलित समाज को जगाना चाहते हैं–

''सभ्य सबसे हिन्द के प्राचीन हकदार हम
था बनाया शूद्र हमको, थे कभी सरदार हम
अब नहीं है वह जमाना, जुल्म 'हरिहर' मत सहो
तोड़ दो जंजीर जकड़े क्यों गुलामी में रहो।''

आधुनिक दलित कवि 'स्वामी अछूतानन्द हरिहर' जानते हैं कि दलितों को मुक्ति न मिलने का राज क्या है? क्यों, उनको शिक्षा से वंचित रखा गया है? इसीलिए वे पोथी–पुराणों को जाली करार देते हैं–

''वेद में भेद छिपा था, हमें मालूम न था,
हाल पोशीदा रखा था, हमें मालूम न था,
ब्राह्मण पोथी पुराणों में निरी भरी उलझन,
फसाना जाली रचा था, हमें मालूम न था,
मनू ने सख्त थे कानून बनाए 'हरिहर'
पढ़ाना कतई मना था, हमें मालूम न था।''[13]

दलित साहित्य सोद्देश्य रचना की माँग करता है। स्वामी अछूतानन्द की रचनाएँ भी कुछ उद्देश्य लेकर चलती हैं। वे जानते हैं कि शोषण को रचने वाली व्यवस्था का आधार क्या है, इसीलिए लिखते हैं–

''निशदिन मनुस्मृति ये, हमको जला रही है,
ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मण व क्षत्रियों को, सबको बनाया अफसर,
हमको 'पुराने उतरन पहनो' बता रही है।
ऐ हिंदू कौम सुन ले, तेरा भला न होगा,
हम बेकसों को हरिहर गर तू रुला रही है।''[14]
(कव्वाली)

स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' के बाद का 'हिन्दी दलित साहित्य' स्वयं 'स्वामी' जी के प्रभाव के कारण और डॉ0 अम्बेडकर के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के कारण अपना वैचारिक धरातल 'ठोस' कर लेता है। 1960 में हो रहे मराठी दलित साहित्य लेखन से भी प्रेरणा लेकर हिन्दी के दलित साहित्यकार पूर्णतः 'अम्बेडकरवादी विचारधारा' से लैश होकर लेखन करने लगते हैं, जबकि इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी साहित्यकारों में भी दलितों को शोषित वर्ग मानकर सहानुभूति–जन्य प्रगतिवादी लेखन कहते हैं।

संदर्भ

1. डॉ0 भवदेव पाण्डेय। लेख, मनू जी तुमने यह क्या किया, पुस्तक। 'कविता के सौ बरस'' संपादक–लीलाधर मंडलोई शिल्पायन दिल्ली–2001 पृष्ठ–57
2. वहीं पृष्ठ संख्या–57
3. पूरन चन्द्र जोशी–लेख, प्रतिगामी साँस्कृतिक अभियान, प्रतिरोध की रणनीति पु0–आलोचना के सौ बरस भाग–2, संपादक–अरविंद त्रिपाठी, संस्करण–2003 शिल्पायन दिल्ली, पृष्ठ–228
4. मैनेजर पाण्डेय–हिन्दी साहित्य में दलित चेतना–हंस, अक्टूबर 1992 पृष्ठ–72
5. चमनलाल–'हिन्दी दलित कविता का वर्तमान और सच', 'कविता के सौ बरस' सं0 लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन संस्करण–2001, पृष्ठ–525

6. मैनेजर पाण्डेय–साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका–1989 संस्करण हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ पृष्ठ–12

7. मदन कश्यप–'अछूत की शिकायत' – 'कविता के सौ बरस' सं0 लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन, दिल्ली, सं0–2001, पृष्ठ–45

8. वही, पृष्ठ–45

9. वही, पृष्ठ–45

10. चमन लाल–'हिन्दी दलित कविता का वर्तमान और सच', पुस्तक–कविता के सौ बरस, शिल्पायन, दिल्ली सं0–2001 पृष्ठ–524

11. वही, पृष्ठ–524

12. स्वामी अछूतानंद की रचनाएं–हंस, अगस्त–2004, पृष्ठ–189

13. वही, पृष्ठ–188